प्रताप-पताका

'रसिक'

प्रताप-पताका

प्रणेता
साहित्यमहोपाध्याय
सुकवि ठा. रणवीरसिंह शक्तावत 'रसिक'

प्रकाशक
सामंत-साहित्य-सदन
ठि० पिपलाज, त० केकड़ी,
जि० अजमेर (राजस्थान)

प्रथम संस्करण : सं० २०३० वि०
मूल्य : १ रु. २५ पैसे मात्र

मुद्रक
सतीशचन्द्र शुक्ल
प्रबन्धकर्त्ता,
वैदिक यन्त्रालय, अजमेर

समर्पण

विश्वेश्वरवदाराध्य पूज्यवर बामहाराज !

किशोरावस्था में जब आपके इस परम प्रिय आत्मज को काव्य-रचना एवं कवि-रहस्य का किञ्चिन्मात्र भी शास्त्रीय बोध नहीं था, तब जन्मजात कवित्व-शक्ति से काव्य-रचना कर सम्माननीया श्री मुन्नालाल-नागरी-प्रचारिणी सभा, अजमेर द्वारा आयोजित कवि-सम्मेलन में पुरस्कार प्राप्त कर सका, इससे स्वतः सिद्ध है कि इस अनुचर के उरस्थल में पैतृक संस्कारजन्य काव्यांकुर सहसा प्रस्फुटित होकर शनैः शनैः अधिकाधिक प्रफुल्लित होते रहने का मूल श्रेय आपको है। फलस्वरूप यह 'प्रताप-पताका' नामक काव्य-रचना आपकी स्वर्गीय आत्मा को पूर्ण श्रद्धा-सहित समर्पित है। इसे स्वीकार कर ऐसा शुभाशीर्वाद प्रदान करने की दया करें कि जिससे स्वर्गादपि गरीयसी मातृभूमि, मा भारती, और देश-भक्तों का यथाशक्ति गुण–गान करता हुआ अपना जीवन सफल करूँ।

करूँ समरपण या कृती, बड़ी न सो तो बात।
सुमरूँ ईसुर-ज्यूँ सदा, तो न उरिण ह्वूँ तात ॥

आपका अभिन्न आत्मज
रणवीर

* श्रीरामदूतंशरणंप्रपद्ये *

निवेदन

स्वनामधन्य महाराणा प्रताप का नाम संसार में सुप्रसिद्ध है। हिन्दू-धर्म-रक्षक, स्वतंत्रता-पुजारी, वीर-शिरोमणि, हिन्दू-सूर्य्य—ये सांकेतिक विशेषण प्रायः महाराणा प्रताप के लिए विश्व-विख्यात हैं। उनकी विश्वविश्रुत यशस्विनी अमर गुण-गाथा का वर्णन अब तक कई कवि-कोविदों ने यथाशक्ति करके अपनी वाणी और लेखनी को पवित्र करते हुए अपना कर्त्तव्य-पालन किया है।

इस अनुचर ने भी श्रद्धा से प्रेरित होकर, अपना कर्त्तव्य-पालन करने के लिए, भावोद्रेक, उमंग, उत्साह और उल्लास के उमड़ पड़ने पर, खड़ी बोली में "प्रताप" महाकाव्य लिखने का प्रयास कर कवि-कुल-गुरु कालिदास की 'प्रांशुलभ्ये फले लोभादुद्बाहुरिव वामनः' तथा 'मणौ वज्र समुत्कीर्णे सूत्रस्येवास्ति मे गतिः' की उक्ति को चरितार्थ कर डाली, परन्तु वह बाल-चापल्य अथवा वामन-चेष्टा सहृदय सज्जनों एवं विद्वज्जनों को बड़ी रुचिकर प्रतीत हुई, जिसको मैं उनका असीम अनुग्रह-अनुराग और अपना अभ्युदय-अहोभाग्य समझता हूँ। हमारी सम्माननीया राजस्थान-साहित्य-अकादमी ने उक्त महाकाव्य पर प्रति-योगिता-पुरस्कार प्रदान कर, परिश्रम सफल करते हुए, जो प्रोत्साहन दिया वह मेरे लिए कृतज्ञतापूर्वक चिरस्मरणीय है। उस प्रोत्साहन से मेरा उत्साहांकुर अधिक प्रफुल्लित हो पाया। फलस्वरूप, इस वृद्धावस्था में भी यदा-कदा काव्य रचना की सहसा उमंग उठने पर मैं थोड़ा-बहुत लिखते रहने का साहस कर बैठता हूँ। जो पुस्तकें मैंने राज्य-सेवा से अवकाश प्राप्त करने के पश्चात् अब तक लिखीं, उनमें से एक यह "प्रताप-पताका" भी है। यद्यपि महाराणा प्रताप पर अब तक कई काव्य-पुस्तकें लिखी जाकर उनका गुण-गान किया जा चुका

है, तथापि हम उनसे यावच्चन्द्रदिवाकर उऋण नहीं हो सकते । उनके यशोगान की तथा जन-रुचि-वैचित्र्य की इयत्ता नहीं हैं—यह समझकर उनका जितना भी गुण-गान किया जाय, थोड़ा है ।

प्रस्तुत पुस्तक "प्रताप-पताका" में राजस्थानी, ब्रज-भाषा और खड़ी बोली—तीनों में, लोक-प्रसिद्ध हृदयग्राही छोटे छंद—दोहे—सोरठे और बड़े छंद-मनहर-घनाक्षरी में, पृथक-पृथक काव्य-रचना है । यद्यपि आज प्रताप-विषयक कई छोटी-बड़ी रचनाएँ उपलब्ध हैं जो काव्य-रसिक महानुभावों के देखने में आई ही होंगी, तदपि यदि वे इस छोटी-सी रचना का सहृदयतापूर्वक अवलोकन करने का अनुग्रह करेंगे तो, मुझे पूर्ण विश्वास है, उनको अवश्य रस मिलेगा और बड़ी प्रसन्नता होगी ।

काव्य-प्रेमियों ने जिस उदारता से "प्रताप" महाकाव्य और उसके पिछले संस्करणों को अपनाने की कृपा की है उसी उदारता से यदि वे इस "प्रताप-पताका" को भी अपनाने का अनुग्रह करेंगे तो मैं उनका विशेष आभार-उपकार मानता हुआ अपना परिश्रम सफल समझूँगा ।

"प्रताप-पताका" में आये हुए कतिपय दोहे-कवित्त श्रीवेङ्कटेश्वर समाचार (बम्बई), क्षात्र-धर्म (जयपुर), प्रताप (उदयपुर), राविरा (अजमेर), परोपकारी (अजमेर)—इन सुप्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओं ने प्रकाशित कर समय-समय पर मुझे बड़ा प्रोत्साहन दिया, अतः उनके माननीय सम्पादक महानुभावों के प्रति मैं अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ ।

वैदिक यन्त्रालय, अजमेर के माननीय प्रबन्धक महोदय श्रीसतीशचन्द्र शुक्लाजी एवं समादरणीय श्री पं० भगवानस्वरूपजी 'न्यायभूषण" को मैं हार्दिक धन्यवाद अर्पण करता हूँ जिन्होंने, उक्त यन्त्रालय में कार्य की अधिकता होने पर भी, इस पुस्तक को छपवा देने की कृपा की है ।

विनीत

विजयादशमी,
सं० २०३० वि०

विद्वज्जन-कृपाकांक्षी
रणवीरसिंह शक्तावत

प्रताप-पताका

मंगलाचरण

(राजस्थानी)

सोरठा

मंगळकरण महान, सरबमंगळा–सुत–चरण ।
धर उणरौ उर ध्यान, गाऊँ राण प्रताप-गुण ।। १ ।।
निज जन-हंस निवाज, रहै सदा तू रीझती ।
बाणी आय बिराज, हम मो मानस-हंस पै ।। २ ।।
सुमिरौं प्रभु सुरभूप, हणूमान संकट-हरण ।
अंजनिकुँअर अनूप–मति-कृति–धृति-गति-भगति में ।। ३ ।।

विरुदावली

धन मिवाड़ धरतीह, जहँ प्रताप-सो जनमियो ।
राखी रजपूतीह, धुर दृढ़ राखी धरम री ।। १ ।।
गौरव छाँड, गुलाम—सह नृप बणिया साहरा ।
बिधि तक होग्यौ बाम, पण नहँ छोड्यौ पण पतै ।। २ ।।
प्रण में बीर प्रताप, हरि सूँ भी बढ़कर हुओ ।
अडिग मेरु-ज्यूँ आप, रह्यौ सदा कुळ-रीत पै ।। ३ ।।
हो हिन्दू-समराट, नाटसाल सह नृपन में ।
डाकी अरिजन डाट, असि रै घाट उतारिया ।। ४ ।।
नरपत दीन्हीं नाँख, नीची सह निरलज्ज ह्वै ।
एक उठा निज आँख, पत राखी राणा पतै ।। ५ ।।
होती सह हुरमाँह, रहती नहँ नृप राणियाँ ।
बादसाह-गळबाँह, पड़ जाती पातळ बिना ।। ६ ।।

मदमातो मातंग, अकबर हो दिल्ली-अधिप ।
अंकुस तिण उतमंग, रह्यौ पता म्हाराण रौ ।। ७ ।।

यूथप यवन-अधीप, हो अकबर इक हिन्द में ।
नवहत्तो अवनीप, हो पत्तो हिन्दूपती ।। ८ ।।

होतो अड्डो हिन्द, तुरकाँ रौ तुरकी तलक ।
अकबर जस्यौ अरिन्द, पातल जो न पछाड़तो ।। ९ ।।

हिन्द माँझ मतिहीण, महिपति तो हा मोखला ।
धीरज-धरम-धुरीण, पणधर हेक प्रताप हो ।। १० ।।

पथ दरसाय प्रताप, आजादी अणमोल रौ ।
अमर ह्वै गयो आप, सुजस कमा संसार में ।। ११ ।।

पायौ जस परताप, जस पायौ कुळ-जनमभू ।
अपजस पायौ आप, अकबर जड़ अखनाक अड़ ।। १२ ।।

प्रगटयौ भाण-प्रताप, हिन्दूपति जद हिन्द में ।
तो लख तिणरौ ताप, तूहिण-ज्यूं गळग्या तुरक ।। १३ ।।

पातल-सा प्रणबीर, होता भूपति हिन्द रा ।
खाता गडक न खीर, तुरकाँ-अँगरेजाँ-तणी ।। १४ ।।

पढता छाँड पुराण, कलमाँ सभी कुराणरी ।
रच्छा पातल राण, जो नहँ करतौ धरम री ।। १५ ।।

लुच्चा काजी लोग, बरबस म्लेच्छ बणावता ।
बणती बडी अजोग, पतौ न जो प्रण ठाणतौ ।। १६ ।।

अटक-कटक तक राज, करता निसकंटक तुरक ।
जो सिंघाँ-सिरताज, होतौ पतौ न हिन्द में ।। १७ ।।

ध्रम-जहाज मँझधार, जाती डूब जरूर ही ।
पकड़ सुदृढ़ पतवार, खुद न पतौ जो खेवतौ ।। १८ ।।

सबळ अरावळि-सीह, डाकी पातळ डकरियो ।
धूज उठी धरतीह, दिल्लीपति-दिल दहलगो ।। १९ ।।

राण पतौ मृगराज, गज-ग्रकबर-मद-गंजणौ ।
अँजसै जीसूँ ग्राज, बारबार ग्राडाबळौ ॥ २० ॥

जाळी जलालुदीन, जकड़्या हिन्दू जाळ में ।
पातळ नीति-प्रबीण, जरजर कर दी जाळ नें ॥ २१ ॥

साह-सामुहै स्याळ, होग्या भूपति हिन्दरा ।
बनराजा बिकराळ, हो पत्तौ हिन्दूपती ॥ २२ ॥

भारत रा हा भूप, उडगण-ससि-जेहा ग्रवर ।
राण पतौ रवि-रूप, होग्यौ सारा हिन्द में ॥ २३ ॥

पातसाह प्रख्यात, ग्रामखाम ग्रकबर करचौ ।
बात पतै बिख्यात, गयौ न नाई ग्रीव ही ॥ २४ ॥

दम रहताँ दीवाण, कदम न दीन्हौं कटहरे ।
कदें न मानी काण, राण पतौ पतसाहरी ॥ २५ ॥

सपना माहिं सलाम, करी नाहिं पत्तौ कदें ।
पातसाह परधाम, गयौ निसासाँ नाँखतौ ॥ २६ ॥

पटकी नहँ निज पाग, पातल ग्ररि ग्रकबर पगाँ ।
दियौ न कुळ रै दाग, पल-पल सहिया दुक्ख पण ॥ २७ ॥

मेदपाट रौ मान, सीसोदयाँ री सान ही ।
ग्रार्यजाति-ग्रभिमान, राख दिया राणा पतौ ॥ २८ ॥

रघूबंस री रीत, धरम-नीति उर धारनै ।
परजा सूं नित प्रीत, पाळी राण प्रतापसी ॥ २९ ॥

मेदपाट-मरजाद, राण पतौ कायम रखी ।
दीन्हीं कदें न दाद, सत्रू ग्रकबर साह नें ॥ ३० ॥

सह लेणौ त्रय ताप, पण सुतंत्र रहणौ सदा ।
पढ़ा मंत्र परताप, ग्रमर नाम करग्यौ इळा ॥ ३१ ॥

समरांगण में साह, ग्रकबर खुद ग्रायौ नहीं ।
न तौ पतौ नरनाह, करतौ दफनहि कबर में ॥ ३२ ॥

अकबर मण्याँ अनेक, भेळा कीन्हा भूपती ।
हाथ न लाग्यौ हेक, मेरु पतौ म्हाराण ही ॥ ३३ ॥
पड़िया नृप परतंत्र, पातसाह रै पींजरै ।
पत्तौ एक सुतंत्र, नवहत्तौ रह्यौ निडर ॥ ३४ ॥
सह नृप स्याळ समान, सीह एक पातळ सबळ ।
गरज्यौ, गरब-गुमान-गज-अकबर रौ गालियो ॥ ३५ ॥
तुरकपती पर ताण, मूँछ पतै म्हाराण ही ।
घोर मचा घमसाण, काण नहीं मानी कदें ॥ ३६ ॥
राण पतौ मृगराज, भमियौ बन-बन भाखराँ ।
भय खा खळ-दळ भाज, गया सभी ज्यूं गादड़ा ॥ ३७ ॥
सुध—हिन्दू-समराट, महाबीर म्हाराण री ।
अकबर रै उच्चाट, लंका-ज्यूँ लागी रहै ॥ ३८ ॥
अकबर री आदेस, नृपति उठा सब ही निलज ।
हो कटिबद्ध हमेस, पातलरै पाछै पड़्या ॥ ३९ ॥
एकलिंग नें एक, स्वामी अपणौ समझियौ ।
नहँ साहाँ री नेक, परवा करी प्रतापसी ॥ ४० ॥
पातसाह नें एक, पत्तो समझ्यौ तास रौ ।
नहँ पत्तौ भय नेक, अकबर रौ उर आणियौ ॥ ४१ ॥
डाकी नहँ डरियोह, जो कदापि जमराज सूँ ।
ऊ पातल तो ओह, नर अकबर पहँ की नमै ॥ ४२ ॥
पसर्‌यौ तेज-प्रताप, हिन्दू-सूर्य प्रताप रौ ।
पड़्यौ आपोंआप, तेज मन्द अकबर तणौ ॥ ४३ ॥
पातल-अनमी पाग, त्याग, तुरँग अणदाग ही ।
आजादी-अनुराग, जाग-जाग जाहर हुआ ॥ ४४ ॥
सह नृप साही साँड, ताँड-ताँड माया न तन ।
बिचलण चह्या ब्रह्माँड, *माँड पतौ रण मसळिया ॥ ४५ ॥

---

* मृगपति पत्तौ मसळिया—पाठांतर ।

नरपतियाँ रै नाथ, नाँखी अकबर नाक में ।
हेक पतौ नहँ हाथ, आयौ डाकी अंत तक ।। ४६ ।।

पातल कह 'पतसाह', नत मस्तक होयो नहीं ।
अकवर भर-भर आह, करचौ सबर जा कबर में ।। ४७ ।।

पातल पहरादार, हो धन-हिन्दू-धरम रौ ।
दूजो नहँ दातार, दीख्यौ जग में देस-हित ।। ४८ ।।
अधरम घोर अँधेर, मचा दियो जद म्लेच्छड़ा ।
सेर पतौ समसेर, थामी हिन्दुसथान में ।। ४९ ।।

माँच्यौ तिमिर महान, तुरकाँ सूं जद तहलको ।
भाण-बंस में भाण, प्रगटचौ राण प्रतापसी ।। ५० ।।
बण अकबर बद साह, आण बदी पर ऊतरचौ ।
निडर पतौ नरनाह, ले भालो ललकारियो ।। ५१ ।।
सेन-मुगल समराट, मेदपाट-म्हाराण नें ।
घेरचौ हळदीघाट, झेली झाट प्रतापसी ।। ५२ ।।
छक्का दिया छुड़ाय, रहग्या हकबक्का रिपू ।
धक्का खाता धाय, मक्का जा लीन्ही मुगल ।। ५३ ।।
भीरु समझ सह भूप, धीरज तज हिन्दू-धरम ।
सरण गही सदरूप, राण पता प्रणबीर री ।। ५४ ।।
जाहर जगदातार, गौ-द्विज-प्राणाधार हो ।
राण पतौ अवतार, होग्यौ हिन्दू-धरम रौ ।। ५५ ।।
अकबर अड़बा आप, आहव में जो आवतौ ।
तौ प्रणवीर प्रताप, कबर माँहि पहुँचावतौ ।। ५६ ।।
भूमी माता भूप, मूढमती मानी नहीं ।
समझी मातसरूप, पातल राण सुजाण पण ।। ५७ ।।
हिम्मत कदें न होय, अकबर पातल सूं अड़ै ।
जावै रह मुख जोय, द्रोही मान स्वदेस रौ ।। ५८ ।।

रोसीलौ मृगराज, महाराण पत्तौ मरद ।
घूमै बन-बन गाज, कांपै तुरकाँ-काळजो ।। ५९ ।।
अकबर तो दिल्लीह, आडाबळै प्रतापसिँह ।
वण्यौ रहै बिल्लीह, बादसाह ह्वै बापड़ौ ।। ६० ।।
अकबर री उम्मीद, मन री मन में ही रही ।
न ली आछैं नींद, पतौ न आयौ पकड़ में ।। ६१ ।।
जी दिन काटी जाय—आटी-मूँछ, उ दिवस सूँ ।
पातल सूँ थरराय, पातसाह-बेगम सदा ।। ६२ ।।
पातल-सुजस-प्रकास, ज्यूँ-ज्यूँ फैलै जगत में ।
गळै न उतरै गास, गात साह दिन-दिन गळै ।। ६३ ।।
सपना में भी साह, पेखै जद परताप नें ।
उठै बोल 'अल्लाह, जान बखस दे, रहम कर' ।। ६४ ।।
जाहर 'जहाँपनाह', चित अकबर बाजण चह्यौ ।
निडर पतौ नरनाह, तिण नें कहतौ 'तुरकड़ो' ।। ६५ ।।
अकबर रौ अभिमान, राण पतौ रज में मिला ।
सूरज-कुळ री सान, रखी सान सह हिन्दरी ।। ६६ ।।
जग में 'जहाँपनाह', है ईसुर ऊ एक ही ।
बणियौ अकबरसाह, बणबा दियौ पतौ न पण ।। ६७ ।।
नर ह्वै कन नरनाह, ईसुर गिणै जु आप नें ।
सरमिन्दा ज्यूँ-साह, होणौ पड़ै 'प्रतापसी' ।। ६८ ।।
महिपत मान-मतंग, म्हावत अकबर मुगलपति ।
धत-धत कर धूतंग, पेल न सक्यौ प्रताप नें ।। ६९ ।।
राण पतौ रणरंग, रोसीलौ मृगपति रच्यौ ।
महिपति मान-मतंग, चल्यौ भाग चीं बोल नै ।। ७० ।।
घोर महा घमसाण, हळदीघाटी में हुओ ।
प्रसण मान ले प्राण, पातल-अग्र पलाइगो ।। ७१ ।।

बण्यौ हिन्द-समराट, अकबर कर सह जतन पण ।
हो हिरदय-समराट, राण पतौ हिँदुआण रौ ।। ७२ ।।
बन-बन छाणी खाक, खाया सकुटुँब ऊमरा ।
नवरोजे जा नाक, रगड़ी नहँ रंगड़ पतौ ।। ७३ ।।
सुण अकबर रौ नाम, तण जाती भ्रकुटी तुरत ।
मूँछ्याँ-बाळ तमाम, फररा उठता राण रा ।। ७४ ।।
अकबर नें इक बार, 'तुरक' उचरि तणियो रह्यौ ।
दिल्ली गढ़ रौ द्वार, धोक्यौ नहँ हिंदूधणी ।। ७५ ।।
बड़ो गौमुखी बाघ, मीठो ठग अकबर महा ।
घणौ घायघड़ घाघ, हो पण राण प्रतापसी ।। ७६ ।।
चलबा दी नहँ चाल, अकबर री तो एक भी ।
राण पतौ बण ढाल, बचा दियौ हिन्दू-धरम ।। ७७ ।।
सह महिपति सिरमौड़, हो प्रताप हिन्दूपती ।
तुरकाँ रा सिर तोड़, राखी सान स्वदेस री ।। ७८ ।।
बण दिल्ली री ढाल, महिप स्याळ मत्तो करचौ ।
दिल्ली-ढाहणवाळ, पत्तौ नवहत्तौ रह्यौ ।। ७९ ।।
कर प्रण पकड़ कृपाण, जो प्रताप नहँ जूझतो ।
सारो तुरकिसतान, होतो हिन्दुसतान ही ।। ८० ।।
अपणी रखणी आन—सान देस री, दे सभी ।
सिखा गयौ सुरथान, हिन्दूपति परतापसी ।। ८१ ।।
प्रण ले पातल राण, 'साह' कह्यौ न सिर नम्यौ ।
अकबर ले अरमाण, जातो रह्यौ जहान सूं ।। ८२ ।।
आन—बान रै काज, ठुकरा दीन्हौं ताज तक ।
बात ख्यात जो आज, रहगी राण प्रताप री ।। ८३ ।।
भारत रा जो भूप, प्रण करता परताप - ज्यूँ ।
अरबिस्तान-युरूप, पड़ता सब ही आ पगाँ ।। ८४ ।।

तुरकाँ री तूतीह, बीरभूमि तक बोलती ।
रज में रजपूतीह, रुलती पातल राण बिन ॥ ८५ ॥
सीह पतौ सौ कोस, रहवै तो भी साह रा ।
होय फाखता होस, रात दिवस उड़िया रहै ॥ ८६ ॥
'तुरक' बोल खग तोल, बाही झट बहलोल पर ।
हय सह खट दो ढोल, करचा पतौ तरबूज-ज्यूँ ॥ ८७ ॥
ठग अकबर रौ ठाट, नृप बस हुआ निहार नैं ।
सह हिन्दू-समराट—पतौ भाँपग्यौ चतुर पण ॥ ८८ ॥
बादसाह बाजार, लंपट ठग लगवा दियौ ।
झाँक्यौ कदैं न जा'र, पतौ न आयौ पेच में ॥ ८९ ॥
गयौ न गाहक आप, बण मीना बाजार में ।
म्हाराणा परताप, रिपु-प्राणाँ-गाहक रह्यौ ॥ ९० ॥
नवरोजाँ बाजार, रजवट सह नृप बेचियो ।
एक धरम-अवतार, राण पतौ रजवट रख्यौ ॥ ९१ ॥
नव रोजाँ री हाट, ठाट जमायौ साह ठग ।
बट बेचण ऊ बाट, नाटसाल नहँ गो पतौ ॥ ९२ ॥
सारा कुटुँब समेत, भूख-प्यास सह भाखराँ ।
हिन्दु-धरम रै हेत, प्राण दियौ राणा पतै ॥ ९३ ॥
रज-रज कण-कण-रेत, साखी राजसथान री ।
हिन्दु-धरम रै हेत, मर मिटियो म्हाराण ही ॥ ९४ ॥
सूतो कदें न साह, निस-दिन सुख री नींद ही ।
नैण-हिये नरनाह—राण पतौ चुभतौ रह्यौ ॥ ९५ ॥
राण पतौ दिनरैण, हौवो दीसै हुरम नें ।
निमिख न लागै नैण, ह्वैगी नींद हराम ही ॥ ९६ ॥
तुरकाँ-हिये तराप, पैठी असी प्रताप री ।
जपै रातदिन जाप, 'या अल्लाह ! या अलीह !!' ॥ ९७ ॥

पड़ताँ नाम 'प्रताप', स्रवणाँ में पतसाह रै ।
तुरतहि चढती ताप, करतौ याद करीम नें ॥ ९८ ॥

मुठठ मान मरजाद, महतब मातरभूमि रौ ।
सुतंत्रता रौ स्वाद, समझ्यौ राण प्रतापसी ॥ ९९ ॥

कंद-मूळ-आणंद, समझ्चौ कै तो संत ही ।
कै परताप सुछंद, सह विजन सूँ वढ सदा ॥ १०० ॥

बन रै मांहि निवास, नव खंड्या महलात सूं ।
सुतंत्रता रौ सास, समझ्यौ सरै प्रतापसी ॥ १०१ ॥

प्रतंत्रता रौ बास, नरकाँ सूं भी है बुरो ।
सुतंत्रता रौ सास, समझ्यो सुरग प्रतापसी ॥ १०२ ॥

सुण प्रताप रौ नाम, कण-कण जण-जण हिन्द रौ ।
जावै फूल तमाम, सीस उठावै गरब सूं ॥ १०३ ॥

गढ सिरमौड़ चितौड़, हय चेटक सिरमौड़ हुव ।
सूरबीर सिरमौड़, होग्यौ राण प्रतापसी ॥ १०४ ॥

साहाँ रौ भी साह, भामासाह सुजाण भो ।
नाहाँ रौ भी नाह, पातल होग्यौ पुहुमि पर ॥ १०५ ॥

परम बीर परताप, अस चेटक अणदाग ही ।
छोडी छिति पर छाप, अकबर-छाती ऊपरैं ॥ १०६ ॥

दिल्ली गढ/रौ दंभ, दंभ गाळ दिल्लीसरौ ।
थयौ हिंदवाँ-थंभ, प्रण दृढ राण प्रतापसी ॥ १०७ ॥

धर पर पातल-धाक, जमगी असी जहान में ।
अरियँद रह्यौ अवाक, सदा अकब्बर साह भी ॥ १०८ ॥

पैज-धरम-प्रतपाळ, काळ सदा तुरकाण रौ ।
केहरि पतौ कराळ, हिन्दू जण री ढाल हो ॥ १०९ ॥

राखी कुळ री रीत, हद राखी हिँदुआण री ।
गावै जग जस-गीत, प्रिथवीनाथ प्रताप रा ॥ ११०

घेरचौ घाट घुमंड, मुगळ-मेघ-मंडळ महा ।
पातळ-पवन प्रचंड, खंड-खंड खळ-दळ कर्यौ ॥ १११ ॥
पेख्याँ चित्र—प्रताप, चित्रलिख्या चकता रहै ।
जप-जप 'अल्ला' जाप, खैर मनावै खौफ सूं ॥ ११२ ॥
सुणताँ नाम 'प्रताप', टाप तुरँग चेटक तणी ।
तुरक लोग खा ताप, सपनै भरदे सूथणाँ ॥ ११३ ॥
कीदौ व्रत-बनवास, जद सूँ राण प्रतापसी ।
अकबर छोडी आस, निज जीवण-सुख-नींदरी ॥ ११४ ॥
सुरक-सुरक मुख साह, हुरक-हुरक हुरमां-हियो ।
*चुरक-चुरक अणथाह, रहै पता म्हाराण सूँ ॥ ११५ ॥
एकळिंग—दीवाण, महाराण परतापसी ।
राख्यौ भुज रै पाण, धरम-करम हिंदुआण रौ ॥ ११६ ॥
सोचो सह संसार, होवै किम इकसार ही ।
अकबर कळु-अवतार, सत-अवतार प्रतापसी ॥ ११७ ॥
दुसह रात-दिन दाह, रहगी दिल में साह रै ।
नम्यौ न सिर नरनाह, प्रण कर राण प्रतापसी ॥ ११८ ॥
इक मजहब इसलाम, चाह्यौ अकबर करण चित ।
अड़चौ पतौ असि थाम, होबा दियौ न हिन्द में ॥ ११९ ॥
मुरगी समझ मिवाड़, बिसमिल्ला करण्याँ मियाँ ।
नाह पता सूँ नाड़, तुड़वा तैंतीसा करचा ॥ १२० ॥
अकबर चह्यौ उठाण, फूट जाणनै फायदो ।
मेदपाट म्हाराण—पतौ न आयौ पकड़ में ॥ १२१ ॥
आरज जाति अनाथ—व्ही नहँ तो-छत हिन्द में !
पातल तू प्रथिनाथ, हो साँचो हिन्दूपती ॥ १२२ ॥

---

* *दुआ करै दरगाह, पड़ै न पालो राण सूँ ।*
अथवा–दुआ करै दरगाह, सुपन न दिसै प्रतापसी । –पाठांतर

बन में रह बरबाद, होग्यौ पण हिम्मत रखी ।
मेदपाट—मरजाद, पाळी राण प्रतापसी ॥ १२३ ॥

नम्यौ न तू सिर नाथ, पड़्यौ न अरि रै तू पगाँ ।
मुगलपती नें माथ, पड़्यौ झुकाणौ मार झख ॥ १२४ ॥

झेली दुसमण-झाट, प्रण कर राण प्रताप पण ।
बिचल्यौ नहँ कुल़-बाट, नहँ विटल्यौ निज धरम सूं ॥ १२५ ॥

चिता-भूमि चित्तौड़, तुरकाँरा चित तोड़नै ।
मूँडा दीन्हा मोड़, स्वामी पाय प्रतापसी ॥ १२६ ॥

अकबर साह-अनीत, भाँपी और न भूपती ।
चतुर महामति चीत, समझी राण प्रतापसी ॥ १२७ ॥

निरलज और नृपाल़, सगपण जोड़्या साह सूं ।
पैज-धरम-प्रतपाल़, राण पतौ अल़गौ रह्यौ ॥ १२८ ॥

पुहुमी भुज रै पाण, रिपु सूँ लेणी-राखणी ।
बीरबंस री बाण, पाल़ी राण प्रतापसी ॥ १२९ ॥

करै महीपत केक, पगचंपी पतसाह री ।
राण पतौ रख टेक, ताण मूँछ 'तुरकट' कहै ॥ १३० ॥

नहँ तो कुळ रै दाग, नहँ निज हय रै दियौ ।
दियौ साह-दिल दाग, आग लगा राणै पतौ ॥ १३१ ॥

अकबर रै उर आग, लगा पतौ जीतो जळा ।
कर यूँ अद्रस दाग, सुद्धी कर हिन्दू करयौ ॥ १३२ ॥

बहणौ कुळ री बाट, कहणौ सो करणौ सदा ।
सहणौ दुख रिपु दाट, रहणौ पातल राण ज्यूँ ॥ १३३ ॥

अकबर समँद अथाह, ग्राह-जवन जामैं घणाँ ।
नावक ह्वै नरनाह—पातल परवाह न करी ॥ १३४ ॥

अधरम घोर अँधार, म्लेच्छ मचायौ हिन्द में ।
होग्यौ मेटणहार, प्रगट दिनेस प्रतापसी ॥ १३५ ॥

सह हिन्दू-समराट—नाटसाल पातल निडर।
*पिसुनाँ सूँ भू पाट, 'मेदपाट' दी सिद्ध कर ॥ १३६ ॥
अकबर सिंधु अपार, जीं रौ जल खारौ जहर।
डाकी गयौ डकार, पातल ह्वै कुंभज प्रगट ॥ १३७ ॥
खूब उडा खिल्लीह, पातल दी पतसाह री।
बरण दिल्ली बिल्लीह, बैठी देखै बापड़ी ॥ १३८ ॥
जाती-धरम-जहाज, डूबरण दी डाकी नहीं।
लाखाँ बाताँ लाज, राखी राण प्रतापसी ॥ १३९ ॥
दी कटवा न दिलेर, गौ-ब्राह्मण री गरदनाँ।
❀जवनाँ नें कर जेर, महाराण पातल मरद ॥ १४० ॥
गउआँ कर गुंजार, सिंघाँ सूँ अड़ती सदा।
म्लेच्छाँ देती मार, राण पता रा राज में ॥ १४१ ॥
मानी नहँ म्हाराण आण-काण अकबर तणी।
एकळिंग री आण, मानी एक प्रतापसी ॥ १४२ ॥
फूँफाजी रै पाण, कर फूँकारा मानसी।
आयौ पण म्हाराण—फूँक बंद कर दी पतौ ॥ १४३ ॥
साह अकब्बर ढाल. समझ मान-सठ काछबो।
लड़ियौ पण लंकाळ, ⊙बखस्यौ प्राण प्रतापसी ॥ १४४ ॥
हिक डक्कर हुंकार☐, पंचानन परताप कर।
आछैं दियौ उतार, मद नृप मान-मतंग रौ ॥ १४५ ॥
हलदीघाट हरोल, हय चेटक आरूढ ह्वै।
बीर पतौ दे बोल, लड़ियौ बढ ललकार नैं ॥ १४६ ॥

---

* *पिसुना सूँ दी पाट, मेदपाट री मेदिनी।*—पाठांतर
❀ *जवनाँ नें कर जेर, महाराण मेवाड़ में।*—पाठांतर
⊙ *बखसी जान प्रतापसी।*—पाठांतर
☐ *हिक प्रहार हुंकार।*—पाठांतर

भूपति मान-भुजंग, मूँछाळो जहरी महा।
राण पता नें रंग, पग दीन्हौं जा पूँछ पर ॥ १४७ ॥
अकबर डाटक एक, जहरीलौ मणिधर जबर।
छाती जीं री छेक, मूँछ कतर छोड्यौ पतै ॥ १४८ ॥
अकबर-उर में आग, दहक उठै जद द्वेष-वस।
आपहि बुझै, अथाग—पाणी पेख प्रताप रौ ॥ १४९ ॥
अरप्या मुंड अपार, महादेव नें मनचह्या।
दीसै भड़-दातार, पातल-सौ नहँ पुहुमि पर ॥ १५० ॥
धरा–हिंदुआँ–धाम, मेदपाट नें मेटबौ।
चाह्यौ तुरक तमाम, पण राख्यौ राणा पतौ ॥ १५१ ॥
दीन्हीं कदें न दाद, चरण कदें चंप्या नहीं।
अकबर नें उसताद, मिल्यौ पतौ म्हाराण ही ॥ १५२ ॥
नृप सब पर नवरंग, चकता अकबर रौ चढ्यौ।
राण पता नें रंग, रह्यौजु नित इकरंग ही ॥ १५३ ॥
बीरभूमि-बन-नास, आयौ करि-अकबर करण।
होग्यौ देख हतास, राण पता बनराज नें ॥ १५४ ॥
पाखर पेख पमंग, भाखर विकट बिलोक भड़।
तुरक अकब्बर तंग, होय पता सूँ हारग्यौ ॥ १५५ ॥
अरि रै होय अधीन, दीन होय पग दाबणौ।
पातल बीर प्रबीण, सीख्यौ कदें न सुपन में ॥ १५६ ॥
मिलिया अकबर-मान, प्राण लेण परताप रा।
दुहुँ नें जीवण-दान, दीन्हौं राण दयाल ह्वै ॥ १५७ ॥
चढा चमू चतुरंग, चकतो पठै चितौड़ पर।
जूझै जम-ज्यूँ जंग, पौरस-धणी प्रतापसी ॥ १५८ ॥
आया अकड़ अमाप, भड़ अकबर रा भिड़ण नै।
पीस दिया परताप, मेदपाट रा पाट में ॥ १५९ ॥

महाराण मेवाड़, प्रण कर बीर प्रतापसी।
अरि-पग दिया उखाड़, दिया न जमबा देस में ॥ १६० ॥
पड़ता पातल-हाथ, दीसै जम रा दंड-ज्यूँ।
गुड़ता दीसै साथ, सहसाँ जवन जमीन पर ॥ १६१ ॥
समर माहिँ परताप, सागैड़ो सूरज जँचै।
सह न सकै रिपु ताप, चालै दुइ कर सहस-ज्यूँ ॥ १६२ ॥
मदमातो मातंग, सूखै जिम सादूल लख।
साह-मान-मद संग, सूखै तिम परताप सूँ ॥ १६३ ॥
जिम पूँचा रै पाण, पंचानन बन में फिरै।
तिम पातल म्हाराण, कानन में बिचरण करै ॥ १६४ ॥
ज्यूँ-ज्यूँ देखै साह, त्यूँ-त्यूँ सिर ऊँचो करै।
नमै न मस्तक नाह, *नाटसाल पातल निडर ॥ १६५ ॥
मेटै मिल तम-तोम, सूरज रा तो सहस कर।
अधरम-तम अरि-जोम, मेट्या दो म्हाराण कर ॥ १६६ ॥
बाधै कर रण बीर, डाकी :वामण-डंड-ज्यूँ।
धरम-धुरंधर-धीर, पातल महा पराक्रमी ॥ १६७ ॥
महाराण-मृगराज, ताजी गंडक तुरकड़ा।
घेरचौ पण सुण गाज, दुम दबाय देग्या दड़ी ॥ १६८ ॥
जलालुदीन जलाल, जुगतबाज जाली जबर।
जिकै बिछायौ जाल, पण नहँ फँस्यो प्रतापसी ॥ १६९ ॥
प्रगटचौ हिन्दुपतीह—जद प्रताप रवि जगत में।
छिपग्या छत्रपतीह—राजा सब ज्यूँ रात रा ॥ १७० ॥
बाही जे बरछीह, पातल महिपति मान पर।
अड़ी न नेक अणीह, सदा रही पण सालती ॥ १७१ ॥

---

* *प्रण दृढ़ अनड़ प्रतापसी।—पाठांतर*

बाही जे बरछीह, पातल मान-मतंग पर ।
मानौ इक मच्छीह, *काला दह सूँ है कढी ।। १७२ ।।
अति ही होय अधीर, हेरचा नृप हिन्दू-धरम ।
रखणहार 'रणबीर', मिल्यौ पतौ म्हाराण ही ।। १७३ ।।
परतापी परताप, अकबर रै उर पर असी ।
छापी खुद री छाप, मरियाँ भी जो नहँ मिटी ।। १७४ ।।
पुण्य-धरम-परताप, सुरग गयौ परतापसी ।
अकबर पाप अमाप, गौ-वध कर जहनुम गयौ ।। १७५ ।।
अकबर रह्यो न आज, रह्यौ न पातल राण ही ।
रह्यौ न ज्याँरौ राज, पण जस रह्यौ प्रताप रौ ।। १७६ ।।
आज देस आजाद, सो प्रताप-परताप सब ।
आवै रह-रह याद, ये मोजाँ वै ऊमरा ।। १७७ ।।
राण पतौ सदरूप, दुनिया में दीसै नहीं ।
सुजस-सरीर-सरूप, अजर-अमर पण है अजौं ।। १७८ ।।
धन-धन बंस सिसोद, धन-धन राण प्रतापसी ।
मातृभूमि रै मोद, मन जीसूँ मावै नहीं ।। १७९ ।।
गिरा करै गुण-गान, सिव फेरै माला सदा ।
धरै धरम नित ध्यान, प्रभु-ज्यूँ मान प्रताप रौ ।। १८० ।।
आसी ध्रम रै काम, खासी धाराँ खडग री ।
जासी सो सुरधाम, पासी नाम प्रताप-ज्यूँ ।। १८१ ।।
धरणौ हरि रौ ध्यान, हरणौ दुख निज देस रौ ।
करणौ नाम निदान, मरणौ राण प्रताप ज्यूँ ।। १८२ ।।
नर जो लेवै नाम, प्रातह राण प्रताप रौ ।
करै सिद्ध सब काम, इष्टदेव इकलिंगजी ।। १८३ ।।

---

* काला सागर सूँ कढी ।—पाठांतर । काला सागर— Black Sea

दोहा

प्रगट भयौ जद पुहुमि पर, हिन्दू-भाण प्रताप ।
अस्त भयौ जवनन-ससी—अकबर आपोंआप ॥ १८४ ॥

हो :साँचौ हिंदूपती, महाराण परताप ।
अकबर-छाती ऊपरैं, ठोकी हिन्दू-छाप ॥ १८५ ॥

गरज्यौ नवहत्तौ पतौ, बन-बन निस-दिन घूमि ।
खिसकी खानाखान रा, पगाँ-तलाँ सूँ भूमि ॥ १८६ ॥

मान भंग कर मान रौ, अकबर रौ अभिमान ।
राखी पत्तै हिन्द री, सीसोद्याँ री सान ॥ १८७ ॥

पातल नवहत्तौ प्रबल, हातल हनै जु हेक ।
पहुमि रसातल पहुँचज्या, उखड़ै अचळ अनेक ॥ १८८ ॥
मुख मोड़्यौ नहँ जंग में, दीन्हौं कुल नहँ दग्ग ।
मरण-काज पत्तौ मरद, आप रह्यौ नित अग्ग ॥ १८९ ॥
भमियौ बन-ब्रन भाखराँ, नवहत्ता-ज्यूँ नित्त !
हत्तल कर डक्कर हती, तुरक जोय जित-तित्त ॥ १९० ॥
अकबर किय भूपन अवर, जम्बुक-गाडर-जत्त ॥
पातल रह्यौ सुतंत्र पर, नवहत्ता-ज्यूँ नत्त ॥ १९१ ॥
हुआ भूप सब हिन्द रा, अकबर रै बस आप ।
राण पतौ स्वाधीन रह, छापी जग में छाप ॥ १९२ ॥
चाह्यौ करबौ साह चित, धरम हिंदवाँ धूर ।
पण राख्यौ राणै पतै, गंजण करचौ गरूर ॥ १९३ ॥
बैंडौ बण ज्यूँ बावन्यौं, भावै पकड़ण भाण ।
तिम चाह्यौ अकबर तुरक, पकड़ण पत्तै राण ॥ १९४ ॥
तँग कीन्हा अकबर तुरक, नामी भारत नाह ।
चबवाया नाकाँ चणाँ, वाह पता तू वाह ॥ १९५ ॥

काटी अकबर-मूँछ इक, बेगम-आटी बीर ।
प्राणदान दीन्हौं प्रगट. रँग प्रताप 'रणबीर' ॥ १९६ ॥
'अकबर तुरक' उचार कर, राखी रघुकुळ-रीत ।
रँग प्रताप म्हाराण नें, देस-कमळ-कुळ-दीत ॥ १९७ ॥
संकट बन बंकट सह्या, धारण कर मन धीर ।
आन-बान राखी अटळ, रँग प्रताप 'रणबीर' ॥ १९८ ॥
कुळ-कळंक नृप मान रौ, भलाँ मान कर भंग ।
नाम रख्यौ मेवाड़ रौ, राण पता नें रंग ॥ १९९ ॥
ताप झेल कुळ-मग्ग सूँ, डिग्यौ न एकौ डग्ग ।
रँग प्रताप रिपु-अग्ग जो, पाछो दियौ न पग्ग ॥ २०० ॥
ध्रू डग्गै चग्गै धरा, उग्गै रवि निस ओह ।
कदें न दग्गै कुळ पतौ, लग्गै अगणत लोह ॥ २०१ ॥
भया और सह भूपति, अकबर रै बस आण ।
एक 'छत्रधारी' अधिप, रह्यौ पतौ म्हाराण ॥ २०२ ॥
[1] आरज-कुळ-सूरज पतौ, जूझै जद रण जा'र ।
तिणरा सूरज-ज्यूँ तुरत, होवै हाथ हजार ॥ २०३ ॥
घर-कानन नभ-ढाल-छत, भालो थंभ प्रमाण ।
चेटक-पीठ-पलंग पर, रहै पतौ म्हाराण ॥ २०४ ॥
बट खा दे-दे मूँछ बट, दरसा उद्भट-उफाण ।
तज्यौ न हट तो तुरक ही, रजवट तज्यौ न राण ॥ २०५ ॥
[2] सेल-नोक रौ सीसवो, खडग-धार री सेज ।
काढै निंदरा यूँ कदें, पातल राखण पैज ॥ २०६ ॥

---

[1] दीसै पातल दोय कर, ज्यूँ सब रै दरसाय ।
जावै हो दुइ सहस जद—जूझै रण में जाय ॥—पाठां.

[2] पोढै पातल प्राणरो—रखै न रंचक हेज ।—पाठांतर

पातल-प्रण बतसाहरै, उर में आग लगाय ।
चिता-ज्वाळ चित्तौड़ री, जवनाँ-चित्त जळाय ॥ २०७ ॥
सूरज जिम परताप सिँघ, आरज-कुळ-अधिराज ।
तारक जिम निसतेज लघु, लगै तुरक-सिरताज ॥ २०८ ॥
तू रवि तेज-प्रताप में, रवि-सुत रण रै माँहि ।
प्रण में तो तो-सम पता ! दीस्यौ दूजो नाँहि ॥ २०९ ॥
नहँ नीती नहँ बीरता, दी अकबर री काम ।
पातल आगै अकल पण, गोटै थई तमाम ॥ २१० ॥
धन सरवस समझ्यौ धरम, पातल राण प्रवीण ।
धन सरवस समझ्यौ धरम, महिप और मतिहीण ॥ २११ ॥
निज भालारी नोक अर, असी-धार सूँ आप ।
खेलै खळ-दळ-संग खुद, रच रण-रंग प्रताप ॥ २१२ ॥
अकबर री जद मूँछ इक, दीन्हीं काट दिखाय ।
पातसाह भी जाणग्यौ, पातल एक बलाय ॥ २१३ ॥
पातल भड़ पतसाह री, धड़ सूँ कर रण घोर ।
काट्या सिर धड़ कइकरा, अरि पड़ भाग्या ओर ॥ २१४ ॥
मैं प्रताप म्हाराणरी, मानूँ असली मूँछ ।
और महीपति-मूँछ तो, ही टाली री पूँछ ॥ २१५ ॥
अनमी पातल-आन तो, अन्त चिता तक गी न ।
बाल-बाल वळ्ग्यौ वळै, मूँछ्याँ नेक मुड़ी न ॥ २१६ ॥
अकबर खानाखान अर, नृपति मान रै नित्त ।
मूँछ-अणी पातल तणी, चुभती घणीज चित्त ॥ २१७ ॥
धन प्रताप हिन्दू-धणी, नाटसाल नरनाह ।
ओझकतो जीसूँ अरी, सूतो अकबर साह ॥ २१८ ॥
उदर भर्यौ खा ऊमरा, बन में कुटी बणाय ।
राण पतौ स्वाधीन रह, निज प्रण दियौ निभाय ॥ २१९ ॥

सीस नमाँ सीसोदपति, गमाँ मान बण गाय ।
'खमाँ' न खानाखान सूँ, करी न कदमाँ जाय ॥ २२० ॥
हिन्द महासागर हिला, तुरकाँ रच्यौ तुफाण ।
जाती धरम-जहाज नें, राखी पातल राण ॥ २२१ ॥
होग्यौ हलदीघाट रौ, बडो जुद्ध बिख्यात ।
'तोबा-तोबा' तुरक तो, बदै अजौं सुण बात ॥ २२२ ॥

नहँ मस्तक नहँ मूँछ ही, नम्यौ हिन्दुआँनाथ ।
दाँत पीस दिल्लीपती, मरग्यौ मल-मल हाथ ॥ २२३ ॥
पवी हूँत पातल-तणौ, कंधो घणौ कठोर ।
नमै न अरि-पहँ नेक ही, जो जम मारै जोर ॥ २२४ ॥
महाराण पत्तौ मरद, बचन उचरि इक बार ।
प्रण कर पुनि नहँ पलटियौ, सब जानत संसार ॥ २२५ ॥
गांधीजी रौ हो गुरू—पथ–दरसक परताप ।
अरि रा पाँव उखाड़िया, असहयोग कर आप ॥ २२६ ॥

दीवानौ निज देसरौ, आजादी रौ एक ।
हो प्रताप प्रणबीर ही, नम्यौ न अरि पहँ नेक ॥ २२७ ॥
होग्या यूँ तो हिन्द में, अधिपति आदि अनेक ।
पथ-दरसक परताप हो, आजादी रौ एक ॥ २२८ ॥
श्रम पहली धरती पछैं, ज्याँ पाछैं धन-धाम ।
राण सिखायौ राखणौ, कर सुतंत्र-संग्राम ॥ २२९ ॥
स्वाभिमान–स्वाधीनता, धरम–धरा–हरिध्यान ।
प्राण देय रखणौ पतौ—सिखा गयौ सुरथान ॥ २३० ॥

धन प्रताप, हिन्दू-धरम—धणी प्रबल उर धार ।
सरण जिकी लीदी सदा, कीदी जय-जयकार ॥ २३१ ॥
दियौ धरम निज देस-हित, तन-मन-धनहि तमाम ।
जीसूँ राण प्रताय रौ, प्रात स्मरणीय नाम ॥ २३२ ॥

प्रातह नाम प्रताप रौ, ले जो हिन्दू लोग ।
जाबै मिट त्रय ताप झट, रोग-दोग-दुख-सोग ॥ २३३ ॥
संकर हिमगिरि-सिखर पर, लियां पताका लार ।
फहरावै नित फलक तक, गुण प्रताप रा गा' र ॥ २३४ ॥
हिमगिरि पर फहरात हर, कर प्रताप-जस-केत ।
हिम सूँ सेत न हिमगिरी, सुजस-पता सूँ सेत ॥ २३५ ॥
गावै नहँ परताप-गुण, हिन्दू जण जो होय ।
है नहँ ऊँ सौ हिन्द में, कृतघण दूजो कोय ॥ २३६ ॥

(ब्रजभाषा)

कवित्त

धर्म-कुल-कानि-काज सब सुख-साज त्यागि,
त्यागी राजधानी कीन्ह्यौ कानन मैं धाम है;
ठान्यौ प्रन पूरन दिवानौ भयौ देस-हित,
कुटुँब-समेत जौ विकानौ बिनु दाम है।
'रसिक' बखानै मुक्त कंठ सौं सहस बार,
सत्रुन सराह्यौ जग जानत तमाम है;
बीर-व्रतधारी, बीर भूमि की बिभूति भारी,
प्रकृति-पुजारी रान पत्ता कौं प्रनाम है ॥१॥

सत्रुन कौ साल, प्रतिपालक दुखीजन कौ,
हिन्दुन की ढाल महाकाल भो चकत्ता कौ;
साहसी अदम्य बीर धर्म-व्रत-धारी धीर,
धेनु-विप्र-बेद कौ पुजारी एक मत्ता कौ।
छाँड़ि इकलिंग ईस और कौं न नायौ सीस,
बीसौं बिसैं राख्यौ रघुबंस-राजसत्ता कौ;
राखी मरजाद हिन्दू-धर्म की जहान माँहि,
कोटि-कोटि धन्यबाद महारान पत्ता कौ ॥२॥

बन-बन खाक छानि राखी निज आन-बान,
राखी कुल-कानि, धर्म राख्यौ हिंदुआन कौ;
खाक मैं मिलाइ खानखाना और मान- मान,
पानी रखि लीन्ह्यौ धाकवारे राजस्थान कौ।
'रसिक' कहाँ लौं कौन सकत सराहि अहो !
सौगुनौ बढ़ायौ राजपूतनि की सान कौ;
रोम-रोम हिंदुन कौ क्यौं न रिनी होवै आज,
हिन्दू-कुल-भानु श्रीप्रताप महारान कौ ॥३॥

दिल्ली-पातसाह कौं उचारि 'तुर्क' एक बेर,
टारी नाहिं टेक फेर रघुकुल-राह की;
बन-बन भ्रम्यौ बिनु असन अकेलौ पर,
अंगीकार कीन्हीं ना अधीनता तो साह की ।
कहै 'रनबीर' निज धर्म दृढ़ राखिबे कौं,
नैंकु तन-मन-धन की न परवाह की;
कैसे कै बखानौं नर पुंगव प्रताप जाहिं,
उपमा उचित नाहिं और नरनाह की ॥४॥

चंद-लौं कलंकवारौ रवि-कुल होतौ हाय !
मेदपाट-मुख पै मसी-सी मढ़ि जावती;
कूरम-कलंक मान-खानखाना आदि सब–
सत्रुन की मूंछ-अनी ऊँची रहि जावती ।
कहै 'रनबीर' हिन्दू होइ जाते चोटीकट,
हिन्द माहिं तुर्कन की जोति जगि जावती;
प्रन पै प्रताप दृढ़ जौ न रहतौ तौ आज–
रज में जरूर राजपूती मिलि जावती ॥५॥

वारौं ब्रहमण्ड बीर ! तेरे भुजदण्ड पर,
चण्डकर वारौं मुखमण्डल तिहारा पै;
कोटिक अनंग तेरे अंग पर वारि डारौं,
वारि डारौं गंग-धारा तेरी खंग-धारा पै ।
वारौं श्रीप्रताप ! तेरे त्याग पै दधीचि-सिवि,
भीषम कौं वारौं ब्रत भीषम करारा पै;
वारि डारौं पातसाही तेरी सान-सौकत पै,
तारापति वारौं तेरे बुलँद सितारा पै ॥६॥

स्वामी एकमात्र मानि एकलिंगनाथहू कौं,
सीस ही नमातौ निज सिर्फ जिन्हैं आप हो;
'रसिक' बखानै बन माहिं अवधूत बनि,
करतौ सदैव 'सिव-सिव' ही कौ जाप हो।

आन-बान-सान कुल-कान स्वाभिमान और,
धर्म-हित देतौ प्रान, साहसी अमाप हो;
सबक स्वतंत्रता कौ सीख्यौ श्रीगनेस ही में,
पाठ परतंत्रता कौ पढ्यौ ना प्रताप हो ॥७॥

नव रसावतार महाराणा श्री प्रतापसिंह

दीस्यौ दिन दूल्हो-सौ **सिँगार**[1] सजि केसरियाँ,
कवच कस्यौ कै **बीर**[2]-सिरोमनि मानौ है;
रौद्र[3] रतनारे नैन रबि-सम आनन तैं,
बरसि अँगारे बन्यौ **भयानक**[4] बानौ है।

अद्भुत[5] दिखाए हाथ, **अट्टहास**[6] कीन्ह्यौ हर,
सव सौं **बिभत्स**[7] समरांगन दिखानौ है;
कोर **करुना**[8] की करि सत्रुन पै, **सांत**[9] भयौ,
नवरसरूप यौं प्रताप दरसानौ है ॥८॥

प्रबल प्रतापी प्रनबीर श्री प्रताप कोपि,
जब 'रनबीर' कीन्हीं जूझन की त्यारी है;
तूरन अवाजैं सुनि सूरन कैं त्यौंही हर—
हूरन-हुलास बढ़यौ बीच हिय भारी है।
भैरव-भवानी-भूत-मण्डली दिवानी भई,
ठानी महा धूमधाम दै-दै किलकारी है;
डमरू सँभारि घोष डिंडिम कौ भारी कियौ,
जारी कियौ ताण्डव हरखि त्रिपुरारी है ॥९॥

चेटक तुरंग पर चढ़िकें प्रताप जब,
कीन्ह्यौ घमसान जंग खंग कौं निकारि कें;
ढेर रुण्ड-मुण्डन कौ करि 'रनबीर' दीन्ह्यौ,
साह की प्रबल सैन्य पल मैं सँघारि कें।
कालिका रुधिर-काज खप्पर लै दौरी झट,
मुण्डन के काज हर दौरे उमा डारि कें;
दौरि परे जुत्थन के जुत्थ भूत-प्रेतन के,
लुत्थन पै लुत्थ रन भूमि मैं निहारि कें ॥१०॥

आयौ चढ़ि चेटक पै प्रबल प्रताप रान,
दलिवे कैं काज जब दिल्लीपति-मान-दाप;
कहै 'रनवीर' कर देखिकें दुधारौ तेग,
जवन-अधीप लाग्यौ जपन इलाही-जाप।
चेटक उड़ाइ, जाइ मान कौं प्रचारचौ जब
'त्राहि-त्राहि' माची साह-सेना माँहि आपोआप;
काँपि उठे जीव-जन्तु, धूजि उठी धरा और,
हर ! हर !! बोले सुर पैखिकैं प्रताप-ताप ॥११॥

चञ्चला-सी चंद्रहास लीन्हैं कर चेटक पै,
चढ़िकैं प्रताप चण्ड सत्रुन प्रचारे हैं;
कहै 'रनबीर' धीर धरिकैं रनाङ्गन मैं,
करि घमसान जुद्ध जवन सँघारे हैं।
खप्पर लै चण्डी, लै जमात निज चन्द्रचूड़,
दौरि-दौरि दोऊ रुण्ड-मुण्डन सँवारे हैं;
रोक्यौ निज हाथ महारान श्रीप्रताप जब,
हारे हर लाँघि-लाँघि रक्त-नद-नारे हैं ॥१२॥

प्रताप की अकबर को चुनौती

तू तौ कूटनीति तैं नरेसन मैं फूट डारि,
आनँद अटूट लूटिबे की ठान लीन्ही है;
कीन्ही है तयारी तू बिचारि लरिबौ ही अब,
हौं हूँ तो सौं जंग जूटिबे की ठान लीन्ही है।
कहत प्रताप, एरे तुरक, छकाइ तोकौं,
दल के सहित कूटिबे की ठान लीन्ही है;
म्लेच्छन सौं पाटि मेदपाट की बिषम भूमि,
झगरे सौं तेरे छूटिबे की ठान लीन्ही है ।।१३।।

ठाट तैं लगाइ हाट तू तौ बनि बैठ्यौ साह,
जोवे नित बाट, ठगिबे की ठान लीन्ही है;
हौं तो प्रान गाहक, न गाहक दुकान कौ हौं,
नाहक, अजान, जूझिबे की ठान लीन्ही है;
भनत प्रताप तेरे दाप कौं दलनवारौ,
खैंचि असि-चाप अरिबे की ठान लीन्ही है;
जौ लौं तन प्रान मेरे मुख मैं जबान तौलौं—
तेरे कौं 'तुरक' कहिबे की ठान लीन्ही है ।।१४।।

प्रताप-प्रतिज्ञा

बंसज कहाइ बीर बप्पा कौ जहान बीच,
'ओम् ओम्' छाँड़ि 'अल्ला-अल्ला' धुनि ध्याऊँ ना;
कहै 'रनबीर' कबौं आन अवनीसन-लौं,
बेटी-ब्यवहार करि आयसु उठाऊँ ना।
भरिहौं उदर खाइ-पाइकैं उदुम्बर पै,
जरदा-पुलावन पै मान-लौं रिझाऊँ ना;
राखियौ बिसास पृथीराज ! हौं प्रताप कबौं,
जीवत अकब्बर कौं मस्तक नमाऊँ ना ।।१५।।

परम पुनीत धर्म वैदिक कौं त्यागि कबौं—
अधम मलेच्छन कौ धर्म अपनाऊँ ना;
कहै 'रनबीर' निगमागम-पुरान छाँड़ि,
कलमा-कुरान पर ध्यानहि लगाऊँ ना।
एकलिंग-आलय कौं छाँड़ि सेस आयु भरि,
मस्जिद-नमाज नवरोजन मैं जाऊँ ना;
तन माहिं प्रान जोलौं, तौलौं बीर पृथीराज !
मान के समान कबौं मस्तक नमाऊँ ना ॥१६॥

भोजन करूँगो नित पातल पलास ही पै,
पञ्चधातु-पातन कौं पानि परसाऊँ ना;
कंद-मूल-फूल-फल खाइकैं भरूँगो पेट,
षटरस-स्वाद-काज मन ललचाऊँ ना।
सयन करूँगो सदा सिखर-सिलान पर,
गिलम गलीचन पै चरन लगाऊँ ना;
कहै 'रनबीर' बनवासी ह्वै रहूँगो पर,
अल्ला कौ उपासी, बासी दिल्ली कौ कहाऊँ ना ॥१७॥

करिकैं निवास गिरि-कन्दरा बिकट माहिं,
निरझर-नीरहू तैं प्यास कौं बुझाइहौं;
कहै 'रनबीर' लाइ कंद-मूल-फूल-फल,
बैठि परिवार बीच खाइहौं-खवाइहौं।
सौंह इकलिङ्गजू की रहिहौं सुछंद सदा,
भीलन के संग भलैं जीवन बिताइहौं;
एहौं पै न आमखास आन अवनीसन-लौं,
तुर्क कौं कदापि निज सीस ना झुकाइ हौं ॥१८॥

पूरन प्रसिद्ध सुद्ध परम सिसोद बंस,
ताकौं सपनेहू मैं कलंक न लगाइहौं;
तन-मन-धन कौ न करिहौं बिचार रञ्च,
रघु-कुल-रीति निज प्रन कौं निभाइहौं।
कहै 'रनबीर' महामाननीय पृथीराज !
एक बेर नीचौ नृप मान कौं दिखाइहौं;
करिहौं समर सत्रु-दल ललकार करि,
जन्मभूमि-जननी कौ दूध ना लजाइहौं ॥१९॥

मान-जिमि राज-पाट ठाट सब ठाटिबे कौं,
बाट नवरोजन की हौं तौ भूलि जाऊँना;
रहिहौं सुतन्त्र सहि भूख-प्यास भारी सदा,
होइ परतंत्र पय मातु कौ लजाऊँ ना।
कहत प्रताप आप पूरन बिसास राखौ,
जौलौं तन साँस आमखास बिच आऊँना,
गुहिलोतबंसी बीर बप्पा कौ कहाइ बीज,
तुर्क-ढिग जाइ सीस जीवत झुकाऊँ ना ॥२०॥
तन-त्रान, पीतपट, झिल्लम उतारि डारि,
आभरन आन कबौं अंग सौं लगाऊँना;
कहै 'रनबीर' कटिबद्ध ही रहूँगो नित,
फलक–कृपान–कुन्त करतैं हटाऊँ ना।
चेटक चढ़्यौ ही चहुँ ओर बिचरूँगो पर,
मान-ज्यौं चकत्ता के चरन सिर नाऊँ ना;
तुर्कन दकालि रन बहुरि करूँगो बस,
जौलौं अधिकार चित्रकूट पै जमाऊँ ना ॥२१॥

卐

चरित प्रताप कौ तौ पार हू न पैये पर,
सार सुनि लीजै ताकौ आप कबिताई तें;
फूँक्यौ जो स्वतन्त्रता कौ मन्त्र देसबासिन मैं,
सो तौ ना नसैहै काहू जन्त्र-जुगुताई तें।
'रसिक' बखानै त्यौंही बिबिध उपाइनि तैं,
मिटिहै न काहू बिधि काहू बादसाही तें;
लैकें किरपान-लोह-लेखनी लिख्यौ जो लेख,
भू पें तुरकान के लहू की लाल स्याही तें ॥२२॥

ज्ञान आत्मगौरव कौ राखिबौ अटल नित,
पालिबौ प्रतिज्ञा निज धरम निभाइबौ;
कहै 'रनबीर' धीर धरिबौ बिपत्ति माहिं,
कायरता चित्त मैं न भूलि कबौं लाइबौ।
कर्मचुत होइ ताकी करिबौ अवज्ञा और,
सत्रुन कौं सीस सपनेहूँ मैं न नाइबौ;
सीखिये प्रताप सौं, स्वप्रान लै हथेरी पर,
जन्मभूमि–जननी पै मरि–मिटि जाइबौ ॥२३॥

(खड़ी बोली)

कवित्त

लाल वीरभूमि का था लाड़ला प्रतापसिंह,
हिन्दू-धर्म-संस्कृति का त्राता एक वोही था;
अटल उपासक था 'रसिक' स्वतंत्रता का,
लोकतंत्रता का जन्मदाता एक वोही था;
देश - कुल - जाति-अभिमान-आत्मगौरव का
पुतला महान मदमाता एक वो ही था;
आर्य्य-कुल-कलम-दिवाकर था दीप्तिमान,
भारत के भाग्य का विधाता एक वोही था ॥१॥

सैकड़ों ही भूप थे हमारे यहाँ भारत में,
उधर अकेला अकब्बर खानखाना था;
किन्तु कर पाये नहीं उसका मुक़ाबिला ही,
क्योंकि चमगीदड़-सा उनका घराना था।
सिंह एक ही था सच्चा राना श्री प्रतापसिंह,
जिसने स्वतंत्रता के हेतु जंग ठाना था;
प्रण को निभाया सदा जब तक प्राण रहे,
शत्रुओं का लोहा कभी स्वप्न में न माना था ॥२॥

यवनों का होता लोमहर्षण था अत्याचार,
पशुवत पापाचार, विकट ज़माना था;
आर्य-ललनाओं की वे लेते थे निशंक लाज,
मन्दिरों को मिट्टी में मिलाना दृढ़ ठाना था।
राजा-महाराजा सब घुटने चुके थे टेक,
हिन्दू-धर्म बचने को ठौर न ठिकाना था;
जिसने बचाया ऐसे संकट में धर्म, वह
राजस्थान-केसरी प्रताप महाराना था ॥३॥

करने लगे थे म्लेच्छ हिन्दुओं का धर्म भ्रष्ट,
निर्भय सतीत्व नष्ट सुन्दर-सी नारी का;
मन्दिरों को तोड़कर मस्जिदें बनाते तुर्क,
काटते थे गौएँ कर कर्म अत्याचारी का।
नदियाँ बहाते खून-खच्चर कर क्रूर, किन्तु
खौल उठा खून न किसी भी खड्गधारी का;
दम था दफन :कर दोजख में भेजने का
राणा श्रीप्रताप वो स्वतन्त्रता-पुजारी का ॥४॥

चोटी कटवा के पढ़ो क़लमा-कुरान न तो
धार तलवार की पै गर्दन कटाना था;
हाहाकार हिन्दुओं का सुनके हिमालय भी
हिल उठता था, ऐसा ज़ुल्म का ज़माना था।
होंठ न हिलाया किसी भूपति ने ठोंक भुज,
अंगीकार किया शीश सबने झुकाना था;
झेल कर कष्ट सब, धर्म को बचानेवाला
एक स्वाभिमानी श्री प्रताप महाराना था ॥५॥

जमने न दिया जहाँ पैर यवनों का कहीं,
हो गया हताश पूर्ण अकबर आप था;
क़लमा-कुरान का न पाया था प्रचार फैल,
होता वेद-मन्त्रों का अखण्ड नित जाप था।
मस्तक उठाके गर्व करता था मेदपाट,
गर्दन विधर्मियों की चुका वह नाप था;
हिन्दू-कुल-धर्म बच पाया इस विश्व में जो,
परम प्रतापी श्रीप्रताप का प्रताप था ॥६॥
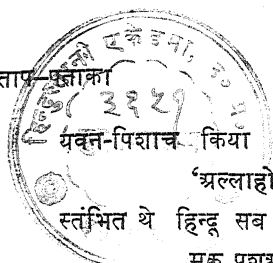
यवन-पिशाच किया करते थे अट्टहास,
'अल्लाहो अकबर' का गूँजता तराना था;
स्तंभित थे हिन्दू सब देख कर अत्याचार,
मूक पशुओं-सा निरा जीवन बिताना था।
ऐसे घोर संकट में प्राण ले हथेली पर
जिसने कठोर प्रण धर्म-हित ठाना था;
पाठ था पढ़ाया हम सबको स्वतन्त्रता का,
हिन्दू-कुल-सूर्य वो प्रताप महाराना था ॥७॥

धर्म दृढ़ रखने को छोड़ कर धरा-धाम,
छानी धूल रात-दिन बन-बन नाना की;
शीश न झुकाया शाहंशाह को पुकारा 'तुर्क',
मिट्टी में मिलादी सब शान खानखाना की।
रक्खी नाक ऊँची राजस्थान की सदैव और
आन-बान-शान जो सिसौदिया घराना की;
'रसिक' रहेगी फहराती सदा स्वर्ग तक
सुयश-पताका श्रीप्रताप महाराना की ॥८॥

पुस्तक-प्रणेता का साहित्यिक परिचय

राजस्थान के सुप्रसिद्ध सम्माननीय साहित्य-वाचस्पति श्रीमान् डॉ. मोती लालजी मेनारिया, एम. ए., पी-एच. डी., अपने महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ "राजस्थान का पिंगल साहित्य" में लिखते हैं—

"रणबीरसिंह—ये पिपलाज-निवासी सामंतसिंह के पुत्र और जाति के शक्तावत राजपूत हैं। इनका जन्म सं. १९६७ में हुआ। ये ब्रजभाषा के परम भक्त एवं सिद्धहस्त कवि हैं और तेरह [illegible] की आयु से कविता करते आ रहे हैं। इनके रचे 'नरसी-[illegible]' और 'हनुमच्चरित' नामक दो खण्डकाव्य प्रकाशित हुए हैं। इनके अलावा इनकी लगभग ५०० फुटकर रचनाओं का एक संग्रह भी 'काव्य-कुंज' नाम से छपा है। ये वीर, शृंगार, हास्य आदि नवों रसों में बड़ी मार्मिक कविता लिखते हैं। विशेषकर इनकी भाषा देखने योग्य है। वह देव और पद्माकर का स्मरण दिलाती है।

अभी-अभी इनका 'प्रताप' नामक एक और ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है। यह महाकाव्य है और खड़ी बोली में लिखा गया है। रचना मनोहारिणी है।"

—साभार उद्धृत

* * * *

नाम 'रनबीर' कबि 'रसिक' कहावें हम,
लाड़िले परम सुत 'साँवत' पिता के हैं;
प्रांत 'अजमेर' थान 'पीपलाज' बासी अरु
बंसज प्रसिद्ध तेज-पुञ्ज सविता के हैं।
किङ्कर-कृपा के अभिलाषी कबि-कोबिद के,
कट्टर हिमायती सु हिन्दी-कबिता के हैं;
काहू नरनाह अरु साह के अधीन नाहिं,
जाके कर बीन लसै हम कबि ताके हैं॥